दो शब्द

प्रिय पाठकों जैन समाज में तत्त्वार्थसूत्र का प्रचार बहुत अधिक है। इसमें जैनधर्म का सम्पूर्ण सिद्धान्त भरा हुआ है, प्रथम गुजरात के किसी द्वैपायिक नाम के श्रावक ने अपने स्वाध्याय के लिए सूत्र लिखना शुरु किया और दिवाल पर– 'दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्ग' लिख दिया, परमं पुण्य से श्री आचार्य उमास्वामी चर्या को आये और आहार लेने के अनन्तर उक्त सूत्र में ''सम्यक्'' पद जोड़कर जंगल में ध्यान करने चले गये। श्रावक जब घर आया और अपने सूत्र में सम्यक् पद जुड़ा हुआ देखा, तब ज्ञान सागर में निमग्न हो आनन्द विभोर हो गया। और मालूम करके उन्हीं आचार्य के पास– मोक्षमार्ग का स्वरूप पूँछता भया– उक्त श्रावक के प्रश्न को लेकर आचार्य सम्यक् दर्शन ज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग:, ''सूत्र प्रारम्भ किया और श्रावक की प्रार्थना से तत्त्वार्थसूत्र की रचना की।

तब से निरन्तर इस पर अनेक संस्कृत भाषा की टीकाएँ हुईं और इसका स्वाध्याय इतना अधिक प्रचलित हुआ इसका माहात्म्य आचार्य ने अपने शब्दों में लिखा है–

फलंस्यादुपवासस्य भाषित मुनि पुंगवै:

अर्थात् इसके एक बार स्वाध्याय से एक उपवास का फल होता है।

अतएव स्वाध्याय प्रेमियों के लिए सरल अल्प समय में अर्थ बोध के लिए संक्षिप्त सूत्रार्थ ''पं. बिमल कुमार जैन शास्त्री'' से लिखाकर प्रकाशित कर रहा हूँ इसमें जो पण्डित जी ने परिश्रम किया है प्रशंसनीय है।

—प्रकाशक

श्रीवर्द्धमानाय नम:

आचार्य श्रीमदुमास्वामीविरचितं

तत्त्वार्थ सूत्र (सार्थ)

मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृतां।
ज्ञातारं विश्वतत्वानां बंदे तद्‌गुणलब्धये।।
त्रैकाल्यं द्रव्यषट्कं नवपदसहितं जीवषट्कायलेश्या:।
पंचान्ये चास्तिकाया व्रतसमितिगतिज्ञानचारित्रभेदा:।।
इत्येतन्मोक्षमूलं त्रिभुवनमहितै: प्रोक्तमर्हद्भिरीशै:।
प्रत्येति श्रद्दधाति स्पृशति च मतिमान् य: स वै शुद्धदृष्टि:।।१।।
सिद्ध जयप्पसिद्धे, चउविहाराहणाफलं पत्ते।
वंदित्ता अरहंते, वोच्छं आराहणा कमसो।।२।।
उज्झोवणमुज्झवणंणिव्बाहणं साहणं च णिच्छरणं।
दंसणणाण चरित्तं तवाणमाराहणा भणिया।।३।।

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग:।।१।।

सम्यग्दर्शन, सम्यगान और सम्यक्‌चारित्र ये तीनों मिलकर मुक्ति के मार्ग हैं।

तत्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्।।२।।

तत्वभूत पदार्थों के विषय में श्रद्धा करना सो सम्यग्दर्शन है। (पदार्थों का यथार्थ ज्ञान होना सो सम्यगान है तथा आत्मा के स्वरूपकी प्राप्ति के लिए सम्यक् प्रवृति करना सो सम्यक् चारित्र है।)

तन्निसर्गादधिगमाद्वा।।३।।

वह सम्यग्दर्शन निसर्ग और अधिगम के भेद से दो प्रकार का होता है। जो अपने खुद के परिणामों से पैदा है वह निसर्गज तथा जो पर के उपदेश, शास्त्र श्रवण गुरु की शिक्षा आदि से होता है वह अधिगमज सम्यग्दर्शन कहलाता है।

जीवा जीवास्रवबन्धसंवर निर्जरामोक्षास्तत्वम्।।४।।

जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्व हैं। (किसी किसी आचार्य के मत से पुण्य व पाव ये दो तत्व भी प्रथक् माने गये हैं; किन्तु यहाँ आस्रव में ही उन दोनों का समावेश कर दिया गया है, इन सातों तत्वों का विस्तार पूर्वक वर्णन आगे के अध्यायों में किया जायगा)।

नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यासः।।५।।

नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव इन चार निक्षेपों के द्वारा सम्यग्दर्शनादिकों का तथा जीवादि तत्त्वों का विभाग (लोक व्यवहार) होता है।

प्रमाणनयैरधिगमः।।६।।

प्रमाण और नयों द्वारा जीवादि तत्वों का ज्ञान होता है। (प्रमाण वस्तु के सर्वांश को ग्रहण करता है तथा नय वस्तु के एकांश को ग्रहण करता है।)।

निर्देशस्वामित्वसाधनाधिकरणस्थितिविधानतः ७

(१) निर्देश (वस्तुस्वरूप) (२) स्वामित्व (मालिकपना) (३) साधन (कारण) (४) अधिकरण (आधार) (५) स्थिति (काल मर्यादा) (६)

विधान (प्रकार) इनसे सम्यग्दर्शनादि एवं जीवादि तत्वों का ज्ञान होता है।

सत्संख्याक्षेत्रस्पर्शन कालान्तरभावाल्पबहुत्वैश्च।।८।।

उसी तरह (१) सत् (सत्ता) (२) संख्या (३) क्षेत्र (४) स्पर्शन (५) काल (६) अन्तर (विरहकाल) (७) भाव (अवस्था विशेष) (८) अल्प बहुत्व, इन अनुयोगों द्वारा भी सम्यग्दर्शनादि विषयों का बोध होता है।

मतिश्रुतावधिमनः पर्यय केवलानिज्ञानम्।।९।।

मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय और केवल इनके भेद से ज्ञान पाँच प्रकार का होता है।

तत्प्रमाणे।।१०।।

वह अर्थात् पाँच प्रकार का ज्ञान दो प्रमाण रूप है।

आद्ये परोक्षम्।।११।।

पहिले के दो ज्ञान मति और श्रुत इन्द्रियादि निमित्त की अपेक्षा रखने से परोक्ष प्रमाण रूप हैं।

प्रत्यक्षमन्यत्।।१२।।

बाकी के तीन ज्ञान अवधि, मनः पर्यय और केवल ये प्रत्यक्ष प्रमाण रूप हैं क्योंकि बिना किसी की सहायता के केवल आत्मा द्वारा उत्पन्न होते हैं।

मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताऽभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम्।।१३।।

मति, स्मरण, संज्ञा (प्रत्यभिज्ञान) चिंता (तर्क) और अभिनिबोध (अनुमान) ये सब एकार्थ वाची हैं।

तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम्।।१४।।

वह मतिज्ञान पाँच इन्द्रिय और छट्टे मन के निमित्त से होता है।

अवग्रहेहावायधारणाः।।१५।।

अवग्रह (विशेष कल्पनारहित सूक्ष्म अव्यक्त ज्ञान) ईहा (विचारणा) अवाय (निश्चय) धारणा (बहुत समय तक नहीं भूलना) इसप्रकार मतिज्ञान चार प्रकार का होता है।

बहुबहुविधक्षिप्राऽनिः सृताऽनुक्तध्रुवाणां सेतराणाम्।। १६।।

बहु (अनेक) बहुविध (अनेक तरह) क्षिप्र (जल्दी) अनिःसृत (नहीं निकलना) अनुक्त (बिना कहे जानना) ध्रुव (निश्चित) तथा इनके उल्टे एक, एकविध, अक्षिप्र, निःश्रित, उक्त और अध्रुव इस तरह अवग्रहादि रूप मतिज्ञान होता है।

अर्थस्य।।१७।।

अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा ये चार प्रकार का मतिज्ञान छः इन्द्रियों और बारह प्रकार के भेदों सहित अर्थ को ग्रहण करता है। एतावत इसके यहाँ तक २८८ भेद हो गये हैं (६X४= २४X१२=२८८)।

व्यञ्जनस्यावग्रहः।।१८।।

व्यञ्जन (अप्रकटरूप) पदार्थ का केवल मात्र अवग्रह ही होता है। ईहादिक अन्य तीन नहीं होते।

न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम्।।१९।।

वह (अप्रकटरूप) पदार्थ का अवग्रह नेत्र और मन से नहीं होता है। केवल मात्र शेष चार इन्द्रियों से ही होता है। (१ X ४=४ X १२=४८ इस तरह २८८+४८=३३६ भेद कुल मतिज्ञान के हुए)।

श्रुतंमतिपूर्वंद्वयनेकद्वादशभेदम्।।२०।।

श्रुतज्ञान मतिज्ञान पूर्वक होता है उसके अंगबाह्य और अंग प्रविष्ट ये दो मुख्य भेद ळें। उसमें पहिला अनेक भेदवाला तथा दूसरा बारह भेदवाला है।

भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणाम्।।२१।।

भवप्रत्यय अवधिज्ञान देव और नारकियों के होता है।

क्षयोपशमनिमित्तः षड्विकल्पःशेषाणाम्।।२२।।

शेष रहे हुए, मनुष्य और तिर्यंचों के क्षयोपशम जन्य अवधि ज्ञान होता है। और वह अनुमागी, अननुगामी, वर्धमान, हीयमान, अवस्थित और अनवस्थित के भेद से छः प्रकार का है।

ऋजुविपुलामती मनः पर्ययः।।२३।।

ऋजुमती और विपुलमती ये दोनों मन पर्यय ज्ञान के भेद हैं।

विशुद्ध—यप्रतिपाताभ्यांतद्विशेषः।।२४।।

ऋजुमती और विपुलमती में विशुद्धि (शुद्धता) और अप्रतिपात (आया हुआ नहीं जावे) इन दोनों की अपेक्षा से अन्तर है।

विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्योऽवधिमनःपर्ययोः।।२५।।

विशुद्धि, क्षेत्र, स्वामी (मालिक) तथा विषय के कारण से अवधिज्ञान और मनः पर्ययज्ञान में अन्तर है।

मतिश्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येष्वसर्वपर्यायेषु।।२६।।

मतिज्ञान व श्रुतज्ञान का विषय कुछ पर्यायों सहित सब द्रव्यों को जानने का है।

रूपिष्ववधेः।।२७।।

अवधिज्ञान का विषय सिर्फ रूपी मूत्तीक, द्रव्यों को जानने का है।

तदनन्तभागे मनःपर्ययस्य।।२८।।

मनः पर्यय ज्ञान की प्रवृत्ति अवधि ज्ञान के द्वारा जाने हुए रूपी द्रव्य के अनन्तवें भाग में होती है।

सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य।।२९।।

केवलज्ञान की प्रवृत्ति सम्पूर्ण द्रव्यों के सम्पूर्ण पर्यायों में होता है।

एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्य:।।३०।।

एक आत्मा में एक साथ एक से लेकर चार ज्ञान तक हो सकते हैं।

मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च।।३१।।

मति श्रुत और अवधि ये तीनों विपरीत अर्थात् कुज्ञान रूप भी होते हैं

सदतारविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत्।।३२।।

जिस प्रकार उन्मत्त का ज्ञान वास्तविक अवास्तविक के भेद को न जानकर जैसा चाहे वैसा ग्रहण कर लेता है उसी प्रकार विचार शून्य उपलब्धि के कारण से वे ज्ञान भी कुज्ञान ही हैं।

नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दसमभिरूढैवम्भूतानया:

नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द समभिरूढ़ और एवं भूत ये नय के सात भेद हैं।

ज्ञानदर्शनयोस्तत्वम्, नयानां चैव लक्षणम्।
ज्ञानस्य च प्रमाणत्व, मध्यायेस्मिन्निरूपितम्।

इति श्रीमदुस्वामी विरचिते मोक्षशास्त्रे प्रथमोऽध्याय:।

औपशमिक क्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य
स्वतत्वमौदयिक पारिणामिकौच।।१ ।।

औपशमिक, क्षायिक, मिश्र (क्षायोपशमिक) औदयिक और पारिणामिक ये पाँच भाव जीव के स्वतत्त्व हैं।

द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमम्।।२ ।।

उपर्युक्त पाँचों भावों के अनुक्रम से दो नौ, अट्ठारह, इक्कीस और तीन भेद हैं।

सम्यक्तव चारित्रे।।३ ।।

औपशमिक भाव के सम्यक्तव और चारित्र ये दो भेद हैं।

ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोग वीर्याणि च।।४।।

केवलज्ञान, केवलदर्शन, दान, लाभ भोग, उपभोग, वीर्य तथा सम्क्त्व और चारित्र ये नौ भेद क्षायिक भाव के हैं।

ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्धयश्चतुस्त्रित्रिपंच
भेदा: सम्क्त्व चारित्र संयमांसयमाश्च।।५।।

चार ज्ञान, तीन अज्ञान, तीन दर्शन, पाँच लब्धि, सम्यक्तव, चारित्र और संयमासंयम ये अट्ठारह भेद क्षायोपशमिक के हैं।

गतिकषायलिंगमिथ्यादर्शनाज्ञानासंयता
सिद्धलेश्याश्चतुस्त्र्येकैकैकैकषड्भेदा:।।६ ।।

चार गति, चार कषाय, तीन वेद, मिथ्या दर्शन, अज्ञान असंयम, असद्धि छ: लेश्या इस तरह कुल मिलकर इक्कीस भेद औदयिक भाव के हैं

जीवभव्याभव्यत्वनि च।।७।।

जीवत्व भव्यत्व और अभव्यत्व ये तीन पारिणामिक भाव हैं तथा च शब्द स अस्तित्व, नित्यत्व, प्रदेशत्व आदि भाव का भी ग्रहण होता है।

उपयोगो लक्षणम्।।८।।

जीव का लक्षण उपयोग (बोधरूप व्यापार) है

स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः।।९।।

वह उपयोग दो प्रकार का है ज्ञानोपयोग व दर्शनोपयोग। ज्ञानोपयोग मतिज्ञानादि के भेद से आठ प्रकार का है तथा दर्शनोपयोग चक्षदर्शनादि के भेद से चार प्रकार का है।

संसारिणो मुक्ताश्च।।१०।।

संसार और मुक्त अवस्था के भेद से जीव दो प्रकार का है।

समनस्कामनस्काः।।११।।

मन सहित संज्ञी और मन रहित असंज्ञा ये संसारी जीवों के दो भेद हैं।

संसारिणस्त्रसस्थावरा।।१२।।

संसारी जीवों के त्रस और स्थावर ये भी दो भेद हैं।

पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः।।१३।।

पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय ये पाँच स्थावर जीवों के भेद हैं।

द्वीन्द्रीयादयस्त्रसाः।।१४।।

दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिया, चारइन्द्रिय और पंचइन्द्रिय, जीवों की त्रस संज्ञा है।

पंचेन्द्रियाणि।।१५।।

स्पर्शन आदि पाँच इन्द्रियाँ हैं।

द्विविधधानि।।१६।।

वे इन्द्रिया द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय के भेद से दो प्रकार की हैं।

निर्वृत्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम्।।१७।।

निवृत्ति (आकार इन्द्रिय) और उपकरण (द्वार के समान साधनरूप इन्द्रिय) ये दो भेद द्रव्येन्द्रिय के हैं।

लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम्।।१८।।

लब्धि (ज्ञयोपशम विशेष) और उपयोग (सावधानता) ये भेद भावेन्द्रिय के हैं।

स्पर्शनरसणनघ्राणचक्षुः श्रोत्राणि।।१९।।

स्पर्शन (त्वचा) रसना (जीभ) घ्राण (नाक) चक्षु (आँख) और श्रोत (कान) ये पाँच इन्द्रियाँ हैं।

स्पर्शरसगंधवर्णशबदास्तदर्था:।।२०।।

स्पर्श, रस, गन्ध वर्ण और शब्द ये पूर्वोक्त पाँच इन्द्रियों के अनुक्रम से विषय होते हैं।

श्रुतमनिन्द्रियस्य।।२१।।

श्रुत, अनिन्द्रिय (मन) का विषय है।

वनस्पत्यंतानामेकम्।।२२।।

पृथ्वीकाय से लेकर वनस्पतिकाय तक जीवों के केवल एक स्पर्शन इन्द्रिय होती है।

कृमिपिपीलिकाभ्रमरमनुष्यादीनामेकैकवृद्धानि।।२३।।

कृमि (कीड़ा) पिपिलिका (चींटी) भ्रमर (भौंरा) और मनुष्य आदिकों के क्रम से एक एक इन्द्रिय अधिक होती है।

संज्ञिनः समनस्काः।।२४।।

संज्ञी जीव मन वाले होते हैं।

विग्रहगतौकर्मयोगः।।२५।।

विग्रह गति में कार्माण काययोग होता है।

अनुश्रेणी गतिः।।२६।।

जीव और पुद्गलों की गति आकाश प्रदेशों की श्रेणि के अनुसार होती है।

अबिग्रहा जीवस्य।।२७।।

मोक्ष में जाते हुए जीव की गति विग्रह रहित होती है।

विग्रहवती च संसरिणः प्राक्चतुर्भ्यः।।२८।।

संसार जीवों की गति सविग्रह और अविग्रह होती है। विग्रह वाली चार समय के पहिले–पहिले अर्थात् तीन समय तक होती है।

एकसमयाऽविग्रह।।२९।।

अविग्रह गति केवल एक समय की होती है।

एकंद्वौत्रीन्वानाहारकः।।३०।।

विग्रह गति में एक, दो अथवा तीन समय तक जीव अनाहारक होता है।

सम्मूर्छनगर्भोपपादाज्जन्मः।।३१।।

संसारी जीवों के सम्मूर्छन, गर्भ और उपपद ये तीन प्रकार के जन्म होते हैं।

सचित्तशीतसंवृता सेतरामिश्चाश्चैकशस्तद्योनय:।।३२।।

तीन प्रकार के जन्म वाले जीवों की सचित्त शीत और संवृत्त (गुप्त) तथा इनके प्रतिपक्षी अचित्त, उष्ण और विवृत (प्रकट) तथा मिश्र अर्थात् सचित्तचित, शीतोष्ण एवं संवृत्तविवृत य नौ योनियाँ होती हैं।

जरायुजण्डजपोतानाम् गर्भ:।।३३।।

जरायु से पैदा होने वाले, अण्डे से पैदा होने वाले तथा पोत जीवों के गर्भ जन्म होता है।

देवनारकाणामुपपाद:।।३४।।

देव और नारकियों का उपपाद जन्म होता है।

शेषाणाम् सम्मूर्छनम्।।३५।।

बाकी के रहे हुए जीवों का जन्म सम्मूर्छन होता है।

औदारिकवैक्रियिकाहारक तैजस–

कार्मणानि शरीराणि।।३६।।

औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मण में पाँच प्रकार के शरीर होते हैं।

परं परं सूक्ष्मम्।।३७।।

उन पाँचों शरीरों में आगे आगे के शरीर पूर्व शरीर की अपेक्षा सूक्ष्म हैं।

प्रदेशताऽसंख्येयगुणं प्राक्तैजसात्।।३८।।

तेजस शरीर से पहिले के तीन शरीर उत्तरोत्तर असंख्यात गुणप्रदेश वाले हैं। अर्थात् औदारिक से वैक्रियिक के प्रदेश असंख्यात गुणे और वैक्रियिक से आहारक के असंख्यात गुण प्रदेश होते हैं।

अनन्तगुणे परे।।३९।।

आगे के दो शरीर तेजस और कार्माण पहिले के शरीरी की अपेक्षा अनन्त गुणे प्रदेश वाले हैं। अर्थात् आहारक से तेजस के प्रदेश अनन्त गुणे और तेजस से कार्माण के प्रदेश अनन्तगुणे होते हैं।

अप्रतीघाते।।४०।।

ये दोनों तेजस और कार्मण शरीर प्रतिघात (बाधा) रहित हैं।

अनादिसम्बन्धे च।।४१।।

ये दोनों शरीर आत्मा के साथ अनादि काल से सम्बन्ध रखने वाले हैं।

सर्वस्य।।४२।।

ये दोनों शरीर तमाम संसारी जीवों के होते हैं।

तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः।।४३।।

तेजस और कार्मण शरीर को आदि लेकर, एक जीव के, एक साथ चार शरीर तक हो सकते हैं।

निरुपभोगमन्त्यम्।।४४।।

केवल अन्तिम कार्माण शरीर उपभोग अर्थात् सुख दुःख आदि के अनुभव से रहित है।

गर्भसम्मूर्छनजमाद्यम्।।४५।।

पहिला औदारिक शरीर गर्भ और सम्मूर्छन से पैदा होने वाले जीवों के होता है।

औपपादिकम् वैक्रियिकम्।।४६।।

उपपाद जन्म से होने वाले जीवों के वैक्रियिक शरीर होता है।

लब्धिप्रत्ययं च।।४७।।

तपो विशेष ऋद्धि प्राप्त जीवों के भी वैक्रियिक शरीर होता है।

तैजसमपि।।४८।।

तेजस भी लब्धि प्रत्यय होता है।

शुभंविशुद्धमव्याघाति चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव।।४९।।

आहारक शरीर शुभ, विशुद्ध और व्याघात रहित होता है तथा यह प्रमत्त संयत नामक छट्ठे गुणस्थानवर्ती मुनि के ही होता है।

नारकसम्मूर्छिनोनपुंसकानि।।५०।।

नारकी और सम्मूर्छन जीव नपुंसक ही होते हैं।

न देवा:।।५१।।

देव नपुंसक नहीं होते हैं।

शेषास्त्रिवेदा:।।५२।।

बाकी के गर्भ से होने वाले जीवों के स्त्री, पुरुष और नपुंसक ये तीनों ही वेद होते हैं।

औपपादिकचरमोत्तमदेहासंख्येयवर्षायुषोनऽपवर्त्यायुष।

उपपाद जन्म से होनेवाले देव नारकी तथा चरम शरीर अर्थात्उसी भव से मोक्ष जानेवाले और असंख्यात वर्ष की आयुवाले उत्तरकुरु आदि क्षेत्रों में पैदा हुए जीवों की अकाल मृत्यु नहीं होती।

इति श्रीतत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः।

अध्याय ३

रत्नशर्करावलुकापंकधूमतमोमहातमः
प्रभाभूमयोघनाम्बुवाताकाशप्रतिष्ठाः सप्ताऽधोधः।।१ ।।

(१) रत्नप्रभा (२) शर्कराप्रभा (३) वालुका प्रभा (४) पंक प्रभा (५) धूम प्रभा (६) तम प्रभा (७) महातम प्रभा। ये सात भूमियें क्रमशः एक दूसरे के नीचे हैं तथा ये घनोदधि वलय (जमे हुए घी के सदृश पानी) के आश्रित हैं। घनोदधि घनवात (जमे हुए घी के समान वायु) के आश्रित है। और घनवात, तनुवात (पिघले हुए घी के समान वायु) के आश्रित है। तनुवात आकाश के आश्रित और आकाश अपने आश्रय पर है।

तासुत्रिंशत्पंचविंशतिपंचदशदशत्रिपंचोनैकनरक—
शतसहस्राणि पञ्चचैव यथाक्रमम्।।२।।

इन नरकों में तीस, पच्चीस, पन्द्रह, दस, तीन, पाँच कम एक लाख और केवल पाँच क्रमानुसार बिल (रहने के स्थान) हैं।

नारका नित्याशुीातरलेश्यापरिणामदेहवेदना विक्रियाः

वे नारकी नित्य अशुभतर लेश्या, परिणाम, शरीर, वेदना और विक्रिया वाले होते हैं।

परस्परोदीरितदु:खा:।।४।।

ये नारकी जीव परस्पर एक दूसरे को अनेक प्रकार के दु:ख पहुँचाते हैं।

संक्लिष्टाऽसुरोदोरितदु:खाश्चप्राक् चतुथ्र्या:।।५।।

तथा संक्लिष्ट परणिाम वाले असुर जाति के देव चौथे नरक के पहिले—पहिले अर्थात् तीसरे नरक तक उन्हें अनेक प्रकार से कष्ट पहुँचाते हैं।

तेष्वकत्रिसप्तदशसप्तदशद्वाविंशति त्रयस्त्रिंशत्
सागरोपमा सत्वानां परा स्थिति:।।६।।

उन नरकों में जीवों की उत्कृष्ट स्थिति क्रम से एक, तीन, सात, दस, सत्रह, बाईस तथा तैंतीस सागरोपम की है।

जम्बूद्वीपलवणोदादय: शुभनामानोद्वीपससुद्रा:।।७।।

जम्बूद्वीप आदि शुभ नाम वाले तथा लवणोदधि आदि शुभ नामवाले असंख्यात द्वीप समुद्र हैं।

द्विर्द्विर्विकम्भा: पूर्वपूर्वपरिक्षेपिणोवलयाकृतय:।।८।।

वे सब द्वीप और समुद्र एक—एक से दुगुने विस्तार वाले तथा पूर्व पूर्व के द्वीप समुद्रों को घेर कर वलयाकृति में स्थित हैं

तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्र—
विष्कम्भोजम्बूद्वीप:।।९।।

उन द्वीप समुद्रों में एक लाख योजन विस्तार वाला गोलाकार जम्बूद्वीप है और उस जम्बूद्वीप के बीच में सुमेरुपर्वत नाभि के तुल्य स्थित है।

भरतहैमवतहरिविदेहरम्यक्
हैरण्यवतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि।।१०।।

इस जम्बूद्वीप में भरत हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक्, हैरण्यवत्, और ऐरावत ये सात क्षेत्र हैं।

तद्विभाजिनः पूर्वापरायताहिमवन्महाहिमवन्निष–
धनीलरुक्मिशिखरिणी वषधर पर्वताः।।११।।

उन क्षेत्रों को जुदा करने वाले पूर्व से पश्चिम ऐसे हिमवान्, महाहिमवान् निषध, नील, रुक्मी और शिखरी ये छः वर्षधर पर्वत हैं।

हेमार्जुनतपनीयवैडूर्यरजतहेममयाः।।१२।।

वे पर्वत क्रमशः पीत, शुक्ल, तपाये हुए सोने के समान, नील, शुक्ल और पीले रंग वाले हैं।

मणिविचित्रापार्श्वा उपरि मूले च तुल्यविस्ताराः।।१३।।

इन पर्वतों के पार्श्व भाग मणियों से विचित्र हैं और ये ऊपर, मध्य व मूल में समान विस्तार वाले हैं।

पद्मममहापद्मतिगिंछकेसरिमहापुण्डरीक
पुण्डरीकाह्रदास्तेषामुपरि।।१४।।

उन पर्वतों पर क्रमशः पद्म, महापद्म तिगिंछ, केसरी, महापुण्डरीक और पुण्डरीक ये छः ह्रद अर्थात् सरोवर हैं।

प्रथमोयोजनसहस्रायामसतदर्द्धविष्कंभोह्रदः।।१५।।

इनमें से पहिलाह्रद पूर्व से पश्चिम एक हजार योजन लम्बा तथा उत्तर से दक्षिण पाँचसो योजन चौड़ा है।

दशयोजनावगाहः।।१६।।

यह पद्म सरोवर दश योजन गहरा है।

तन्मध्येयोजनं पुष्करम्।।१७।।

उसके बीच में एक योजन का लम्बा चौड़ा कमल हे।

तद द्विगुणद्विगुणा ह्रदापुष्कराणिच।।१८।।

पहिले तालाब और कमल से अगले अगले तालाब और कमल दुगुणे दुगुणे विस्तार वाले हैं।

तन्निवासिन्यो देव्य: श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्म्य:
पल्योपमस्थितय: ससामानिक परिषत्का:।।१९।।

उक्त कमलों में निवास करने वाली श्री, ह्री, धृति कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी ये छ: देवियाँ सामानिक और पारिषद जाति के देवों सहित हैं। और उनकी स्थिति एक पल्पोपम की है।

गंगासिन्धुरोहितरोहितास्याहरिद्धरिकांतासीतासीतो—
दानारीनरकांतासुवर्णरूप्यकूलारक्तारक्तोदासरितस्त—
न्मध्यगा:।।२०।।

उक्त छ: सरोवरों से निकलने वाली गंगा, सिन्धु रोहित, रोहितास्या, हरित् हरिकांता, सीता, सीतोदा, नारी नरकांता, सुवर्णकूला, रूप्यकूला, रक्ता, रक्तोदा ये चौदह नदियें उन भरतादि सप्त क्षेत्रों में बहती हैं।

यो: पूर्वा: पूर्वगा:।।२१।।

सूत्र निर्देश की अपेक्षा दो दो के युगल में पहिली पहिली नदी पूर्व समुद्र में जाकर गिरती हैं

शेषस्त्वपरगा:।।२२।।

बाकी की सात नदियाँ पश्चिम समुद्र में जाकर गिरती हैं।

चतुर्दशनदी सहस्रपरिवृतागंगासिध्वादयोनद्य:।।२३।।

गंगा सिन्धु आदि नदियाँ चौदह चौदह हजार नदियों के परिवार सहित हैं।

भरतः षड्विंशतिपंचयोजनशतविस्तारः
पट् चैकोनविंशतिभागा योजनस्य।।२४।।

भरतक्षेत्र का विस्तार ५२६^{६}/९ योजन है।

तद्द्विगुणद्विगुण विस्तारा वर्षधरवर्षाविदेहान्ताः।।२५।।

विदेह क्षेत्र तक के पर्वत और क्षेत्र इस भरत क्षेत्र से दुगुणे–दुगुणे बिस्तार वाले हैं अर्थात् क्षेत्र से दूना पर्वत, पर्वत से दूना क्षेत्र है।

उत्तरादक्षिणतुल्याः।।२६।।

विदेह क्षेत्र से उत्तर के तीन पर्वत और तीन क्षेत्र, दक्षिण पर्वतों और क्षेत्रों के समान विस्तार वाले हैं।

भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौषट्सम–
याभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम्।।२७।।

उपसर्पिणी और अवसर्पिणी रूप छः कालों से भरत और ऐरावत क्षेत्रों के मनुष्यों की आयु, काय, भोगोपभोग आदि का वृद्धि और ह्रास होता है।

ताभ्यामपराभूमयोऽवस्थिताः।।२८।।

भरत और ऐरावत क्षेत्र को छोड़कर बाकी की पाँच भूमियाँ ज्यों की त्यों नित्य हैं। वहाँ के भोग भूमियाँ जीव व कर्मभूमियाँ जीवों की आयु आदि काम का वृद्धि ह्रास नहीं होता है।

एकद्वित्रिपल्योपमस्थितयो
हैमवतकहारिवर्षकदेवकुरवकाः।।२९।।

हिमवान् क्षेत्र के हरिक्षेत्र के देवकुरु भोगभूमि के मनुष्य क्रम से एक, दो और तीन पल्य की आयु वाले होते हैं।

तथोत्तरा:।।३०।।

जैसे दक्षिण के क्षेत्रों की रचना है, उसी प्रकार उत्तर के क्षेत्रों की है।

विदेहेषुसंख्येयकाला:।।३१।।

पाँचों ही विदेह क्षेत्रों में संख्यात वर्ष की आयु वाले मनुष्य होते हैं।

भरतस्यविष्कम्भोजम्बूद्वीपस्यनवतिशतभाग:।।३२।।

भरत क्षेत्र का विस्तार जम्बूद्वीप के १/१९० भाग प्रमाण है।

द्विर्धातिकीखण्डे।।३३।।

धातकी खण्ड नामक दूसरे द्वीप में भरतादि क्षेत्र दो दो हैं।

पुष्करार्धे च।।३४।।

पुष्कर द्वीप के आधे भाग में भी धातकीखण्ड के समान भरतादि क्षेत्र जम्बूद्वीप से दुगुने हैं।

प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्या:।।३५।।

मानुषोत्तर पर्वत के पहिले पहिले ही अढ़ाई द्वीप में मनुष्य उत्पन्न होते हैं।

आर्या म्लेच्छाश्च।।३६।।

ये मनुष्य आर्य और म्लेच्छ के भेद से दो प्रकार के हैं

भरतैरावतविदेहा: कर्मभूमयोऽन्यत्रदेवकुरूत्तर–

कुरूभ्य:।।३७।।

देवकुरु और उत्तरकुरु क्षेत्र को छोड़कर पाँच भरत, पाँच ऐरावत और पाँच विदेह इसप्रकार पन्द्रह कर्म भूमियाँ हैं।

नृस्थिती परावरे त्रिपल्योपमांतर्मुहूर्ते।।३८।।

मनुष्यों की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम की, तथा जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है।

तिर्यग्योनिजानां च।।३९।।

तिर्यंचों की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम की जघन्य एक अन्तर्मुहूर्त की है।

इति श्रीतत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे तृतीयोऽध्याय:।

अध्याय ४

देवाश्चतुर्णिकाया:।।१।।

भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक इसप्रकार देव चार प्रकार के हैं।

आदितस्त्रिषु पीतांतलेश्या:।।२।।

पहिले की तीन निकायों में कृष्ण, नील, कापोत और पीत ये चार ही लेश्या होती हैं।

दशाष्टपञ्चद्वादशविकल्पा: कल्पोपपन्नपर्यनता:।।३।।

भवनवासी के दस, व्यंतर के आठ, ज्योतिष्क के पाँच और कल्पोपपन्न वैमानिक के बारह भेद हैं।

इन्द्रसामानिकत्रायस्त्रिंशपारिषदात्मरक्षलोकपाला–
नीकप्रकीर्णकाभियोग्यकिल्विषिकाश्चैकश:।।४।।

इन चारों प्रकार के देवों में प्रत्येक के इन्द्र सामानिक (आयु आदि में इन्द्र के समान किन्तु इन्द्र पद रहित) त्रायस्त्रिंश (मंत्री अथवा पुराहित तुल्य), परिषद (मित्र तुल्य), आत्मरक्ष लोकपाल अनीक (सेना तुल्य), प्रकीर्णक (नगर निवासी तुल्य), आभियोग्य (दास तुल्य) किल्विषिक (अंत्यज समान) दश दश भेद होते हैं।

त्रायस्त्रिंशलोकपालवर्ज्या व्यन्तरज्योतिष्का:।।५।।

व्यन्तर और ज्योतिष्क देवों में त्रायस्त्रिंश और लोकपाल ये दो भेद नहीं होते हैं।

पूर्वयोर्द्वीन्द्रा:।।६।।

पहिले के दो निकायो में दो दो इन्द्र होते हैं।

कायप्रवीचारा आ ऐसानात्।।७।।

ऐशान स्वर्ग तक के देव मनुष्यों के समान शरीर से काम सेवन करनेवाले होते हैं।

शेषा: स्पर्शरूपशब्दमन: प्रवीचारा:।।८।।

ऊपर के स्वर्गों के देव क्रमश: स्पर्श करने से रूप देखने से, शब्द सुनने से और विचार मात्र करने से प्रवीचार (काम सेवन) करने वाले हैं। अर्थात् इतने मात्र से वासना पूर्ति हो जाती है।

परेऽप्रवीचारा:।।९।।

सोलह स्वर्गों से आगे के नव ग्रैवेयक आदि विमानों में रहने वाले देव काम सेवन रहित हैं।

भवनवासिनोऽसुरनागविद्युत्सुपर्णाग्नि–

वातस्तनितोदधिद्वीप दिक्कुमाराः।।१०।।

भवनवासी (१) असुरकुमार (२) नागकुमार (३) विद्युत कुमार (४) सुपर्णकुमार (५) अग्निकुमार (६) वायुकुमार (७) स्तनित कुमार (८) उदधि कुमार (९) द्वीप कुमार (१०) दिक्‌कुमार के भेद से दस प्रकार के हैं।

व्यंतराः किन्नरकिम्पुरुषमहोरगगन्धर्व–
यक्षराक्षसभूतपिशाचाः।।११।।

(१) किन्नर (२) किम्पुरुष (३) महोरग (४) गन्धर्व (५) यक्ष (६) राक्षस (७) भूत (८) पिशाच ये आठ प्रकार के व्यन्तर देव होते हैं।

ज्योतिष्काः सूर्याचन्द्रमसौ ग्रह
नक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च।।१२।।

ज्योतिष्क देव (१) सूर्य (२) चन्द्रमा (३) ग्रह (४) नक्षत्र (५) प्रकीर्णक तारे, इस तरह पाँच प्रकार के हैं।

मेरुप्रदक्षिणानित्यगतयो नृलोके।।१३।।

ये सब ज्योतिष्क देव मनुष्यलोक में सुमेरू पर्वत की प्रदक्षिणा देते हुए निरन्तर करनेवाले हैं।

तत्कृतः कालविभागः।।१४।।

घड़ी पल आदि समय का विभाग सूर्य चन्द्रमा द्वारा सूचित होता है।

बहिरवस्थिताः।।१५।।

मनुष्य लोक के बाहर वे सब ज्योतिष्क देव स्थिर हैं।

वैमानिकाः।।१६।।

विमानों में रहने वाले वैमानिक देव कहलाते हैं। अब उनके विशेष भेद आगे कहेंगे।

कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च।।१७।।

उक्तवैमानिक देव कल्पोपपन्न और कल्पातीत के भेद से दो प्रकार के हैं।

उपर्युपरि।।१८।।

वे एक एक के ऊपर स्थित हैं।

सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलांतवका— पिष्ट शुक्रमहाशुक्रसतारसहस्रारेष्वानतप्राणतयोरार— णाच्युतयोर्नवसुग्रैवेयकेषु विजयवैजयंतजयंतापरा— जितेषु सर्वार्थसिद्धौच।।१९।।

सौधर्म, ऐशान, सनत्कुमार, महेन्द्र, ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लांतव, कापिष्ट, शुक्र, महाशुक्र, सतार, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत इन १६ स्वर्गों में तथा नव ग्रैवेयक और विजय, वैजयंत, जयंत और अपराजित नाम के विमानों में तथा सर्वार्थसिद्धि में वैमानिक देवों का निवास है।

स्थितिप्रभावसुखद्युतिलेश्याविशुद्धीन्द्रियावधिविष यतोऽधिकाः।।२०।।

आयु, प्रभाव, सुख, कांति, लेश्या की विशुद्धता, इन्द्रियों का और अवधिज्ञान का विषय ये सब ऊपर ऊपर के देवताओं में अधिक हैं।

गतिशरीरपरिग्रहाभिमानतोहीनाः।।२१।।

किन्तु, गति, शरीर का परिमाण, परिग्रह और अभिमान इन विषयों में ऊपर ऊपर के देव हीन हैं।

पीतपद्मशुक्ललेश्या द्वित्रिशेषेषु।।२२।।

दो युगलों में और शेष के समस्त विमानों में क्रम से पद्म और शुक्ल लेश्या होती है।

प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः।।२३।।

ग्रैवेयकों से पहिले पहिले के स्वर्ग कल्प संज्ञा वाले अर्थात् इंद्रादिक भेद वाले हैं।

ब्रह्मलोकालया लौकान्तिकाः।।२४।।

जो पाँचवें ब्रह्म स्वर्ग के अन्त में रहते हैं वे लोकान्तिक देव हैं।

सारस्वतादित्यवन्हयरुणगर्दतोयतुतिषताव्याबाधा— रिष्टाश्च।।२५।।

सारस्वत, आदित्य, बह्नि, अरुण, गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध और अरिष्ट ये आठ प्रकार के लौकन्तिक देव होते हैं।

विजयादिषु द्विचरमाः।।२६।।

विजयादिक चार विमानों में देव द्विचरम अर्थात् मनुष्य के दो जन्म लेकर मोक्ष जाते हैं। सर्वार्थसीद्धि के देव एक भवावतारी होते हैं।

आपेपादिक मनुष्यः शषास्तियग्योनयः।।२७।।

देव, नारकी और मनुष्यों के अतिरिक्त शेष सब जीव तिर्यंच हैं।

स्थितिरसुरनागसुपर्णद्वीपशेषाणाम् सागरोपमत्रिषल्योपमार्द्ध हीनमिताः।।२८।।

भवनवासी देवों में असुर कुमारों की उत्कृष्ट आयु एक सागर, नाग कुमारों की तीन पल्य, सुपर्णकुमारों की ढाई पल्य, द्वीपकुमारों की दो पल्य और शेष ६ कुमारों की डेढ़ २ पल्य है।

सैधर्मेशानयोः सागरोपमे अधिके।।२९।।

सैधर्म और ऐशान स्वर्ग के देवों की उत्कृष्ट आयु दो सागर से कुछ अधिक है।

सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः सप्त।।३०।।

सनत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्ग के देवों की उत्कृष्ट आयु सात सागर से कुछ अधिक है।

त्रिसप्तनकावैदशत्रयोदशपंचदशभिरधिकानि तु।।३१।।

आगे के छः युगलों में क्रम से दश, चौदह, सोलह, अट्ठारह, बीस और बाईस सागर से कुछ अधिक उत्कृष्ट स्थिति है।

आरणाच्युतादूर्ध्वमेकैकेननवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थसिद्धौ च।।३२।।

आरण अच्युत युगलों से ऊपर नव ग्रैवेयकों में, नवअनुदिश, विजयादिक चार विमानों में और सर्वार्थसिद्धि में एक एक सागर बढ़ती आयु है।

अपरा पल्योपममधिकम्।।३३।।

सौधर्म और ऐशान स्वर्ग में जघन्य स्थिति एक पल्य से कुछ अधिक है।

परतः परतः पूर्वापूर्वाऽनन्तरा।।३४।।

पहिले पहिले युगल की उत्कृष्ट स्थिति आगे आगे के युगलों में जघन्य है। सर्वार्थसिद्धि में जघन्य आयु नहीं होती है।

नारकाणां च द्वितीयादिषु।।३५।।

इसी प्रकार दूसरे तीसरे आदि नरकों में भी जघन्य आयु समझ लेनी चाहिए।

दशवर्ष सहस्राणि प्रथमायाम्।।३६।।

पहिले नरक में दशहजार वर्ष की जघन्य आयु है।

भवनेषु च।।३७।।

भवनवासियों में भी जघन्य आयु दशहजार वर्ष की है।

व्यंतराणां च।।३८।।

व्यंतर देवों की भी जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की है।

परा पल्योपममधिकम्।।३९।।

व्यंतरों की उत्कृष्ट आयु एक पल्योपम से कुछ अधिक हैं

ज्योतिष्काणांच।।४०।।

ज्योतिष्क देवों की भी उत्कृष्ट आयु एक पल्य से कुछ अधिक है।

तदष्ट भागोऽपरा च।।४१।।

ज्योतिष्क देवों की जघन्य आयु एक पल्य के आठवें भाग प्रमाण है।

लौकान्तिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम।।४२।।

समस्त लौकान्तिक देवों की उत्कृष्ट और जघन्य आयु आठ सागर की है।

इति तत्वार्थाधिगमे मोद्यशास्त्रे चतुर्थोऽध्याय:।

अवसर्पिणी काल

चतुर्थकाल— ४२ हजार वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ी सागर
पंचमकाल— २१ हजार वर्ष
षष्ठमकाल— २१ हजार वर्ष

उतसर्पिणी काल

षष्ठमकाल— २१ हजार वर्ष
पंचमकाल— २१ हजार वर्ष
चतुर्थकाल— ४२ हजार वर्ष मक एक कोड़ा कोड़ी

अध्याय ५

अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गला:।।१ ।।

धर्म, अधर्म, आकाश और पुद्गल ये चार द्रव्य अजीवकाया अर्थात् अचेतन और बहु प्रदेशी पदार्थ हैं।

द्रव्याणि।।२।।

ये चारों पदार्थ द्रव्य हैं।

जीवाश्च।।३।।

जीव भी अचेतनों से पृथक् द्रव्य हैं।

नित्यावस्थितान्यरूपाणि।।४।।

ये द्रव्य नित्य (कभी नष्ट नहीं होनेवाले), अवस्थित (संख्या में घटने बढ़ने से रहित) और अरूपी हैं।

रूपिणः पुद्गलाः।।५।।

किंतु पुद्गल द्रव्य रूपी हैं।

आ आकाशादेकद्रव्याणि।।६।।

धर्मास्तिकाय से लेकर आकाश तक ये द्रव्य एक एक हैं।

निष्क्रियाणि च।।७।।

और ये तीनों ही द्रव्य चलन रूप क्रिया से रहित हैं।

असंख्येयाः प्रदेशा धर्माधमक जीवानाम्।।८।।

धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य और एक जीव द्रव्य के असंख्यात् २ प्रदेश हैं।

आकाशास्यानन्ताः।।९।।

आकाश के अनंत प्रदेश हैं। किन्तु लोकाकाश के असंख्यात् प्रदेश हैं

संख्येयाऽसंख्येयाश्चपुद्गलानाम्।।१०।।

पुद्गलों के प्रदेश संख्यात, असंख्यात् और अनंत होते हैं।

नाणोः।।११।।

अणु अर्थात् परमाणु के द्रव्य व्यक्ति रूप में बहु प्रदेश नहीं हो सकते किन्तु वह एक प्रदेशी होता है।

लोकाकाशेऽवगाहः।।१२।।

इन समस्त धर्मादि द्रव्यों की स्थिति लोकाकाश में है।

धर्माधर्मयोः कृत्स्ने।।१३।।

जैसे तिलों में सर्वत्र तेल व्याप्त है उसी प्रकार लोकाकाश के समस्त प्रदेशों में धर्म और अधर्म द्रव्य के प्रदेश व्याप्त हैं।

एकप्रदेशादिषु भाज्यः पुद्‌गलानाम्।।१४।।

उन पुद्‌गलों की स्थिति लोकाकाश के एक प्रदेश आदि में विकल्प से जानना चाहिए। अर्थात् लोकाकाश के एक प्रदेश में अवगाहन सामर्थ से सूक्ष्म परिणाम से बहुत पुद्‌गलअणु स्कंध ठहर सकते हैं।

असंख्येयभागादिषु जीवानाम्।।१५।।

लोक के असंख्यातवें भाग आदि में जीवों का अवगाह है।

भावार्थ— लोक के असंख्यातवें प्रदेश को आदि लेकर—संख्यात असंख्यात प्रदेश (समस्त लोकाकाश प्रमाण) तक जीव का अवगाह है; केवली भगवान् समुद्‌घात अवस्था में लोकपूर्ण आत्म प्रदेश करते हैं और वह असंख्यात प्रदेशी एक जीव भी प्रदेशों में संकोच विस्तार गुण होने से अल्प क्षेत्र में अवगाहन करता है।

प्रदेशसंहारविसर्पाभ्यां प्रदीपवत्।।१६।।

प्रदेशों में संकोच विस्तार गुण होने से दीपक की तरह, भावार्थ— असंख्यात प्रदेशी लोकाकाश है उसमें अनंत पुद्‌गल अनंतानंत असंख्यात प्रदेशी जीव कैसे अवगाह कर सकते हैं?

उत्तर— जिस प्रकार एक दीपक की रोशनी जितने विस्तृत क्षेत्र में फेलती है वही दीपक की रोशनी अल्पक्षेत्र में संकोचगुण से अल्पक्षेत्रस्य हो जाती है उसी प्रकार असंख्यात प्रदेशी लोकाकाश में अनंतानंत जीव पुद्‌गलों का संकोच विस्तार गुण होने से अवगाहन होता है।

गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकारः।।१७।।

जीव और पुद्गलों के चलने में तो धर्म द्रव्य सहकारी है और स्थिति करने में अधर्म द्रव्य उपकारी (सहायक) है, प्रेरक नहीं है।

आकाशस्यावगाहः।।१८।।

अवकाश अर्थात् जगह देना यह आकाश द्रव्य का उपकार है।

शरीरवाङ्मनः प्राणापानाः पुद्गलानाम्।।१९।।

शरीर, वचन, मन, प्राण—अपान यह पुद्गलों का उपकार है।

सुखदुखजीवितमरणोपग्रहाश्च।।२०।।

तथा सुख, दुःख जीवन, मरण ये उपकार भी पुद्गलों के हैं।

परस्परोपग्रहो जीवानाम्।।२१।।

हिताहित स्वरूप परस्पर एक दूसरे का सहायक होना जीवों का उपकार हैं

वर्तमानपरिणामक्रिया परत्वापरत्वे च कालस्य।।२२।।

वर्तना, परिमाण, क्रिया, परत्व और अपरत्व ये पाँच काल के उपकार हैं।

स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः पुद्गलाः।।२३।।

स्पर्श, रस, गंध और वर्ण वाले पुद्गल द्रव्य हैं।

शबदबन्धसौक्ष्म्यसौल्यसंस्थानभेदतम—
श्छायाऽऽतपोद्योतवन्तश्च।।२४।।

तथा ये पुद्गल शब्द, बंध, सूक्ष्मता, स्थूलता, संस्थान, भेद, अन्धकार, छाया, आतप (धूप), उद्योत (शीतल प्रकाश) सहित है।

अणवस्कन्धाश्च।।२५।।

पुद्गलों के अणु और स्कंध ये दो भेद भी होते हैं।

भेदसंघातेभ्य उत्पद्यन्ते।।२६।।

भेद (भाग करना), संघात (एकत्रित करना) और भेद संघात तीन कारणों से स्कंध पैदा होते हैं।

भेदादणु:।।२७।।

अणु भेद से ही होता है संघात से नहीं।

भेदसंघाताभ्यां चाक्षुष:।।२८।।

जे नेत्रेन्द्रिय गोचर स्कंध होता है वह भेद और संघात दोनों से ही होता है।

सद्द्रव्यलक्षणम्।।२९।।

द्रव्य का लक्षण सत्ता है।

उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्।।३०।।

जो उत्पत्ति, विनाश और स्थिरता युक्त है वही सत् है।

तद्भावाऽव्ययं नित्यम्।।३१।।

जो अपने स्वरूप से नाश को प्राप्त नहीं होता है वही नित्य है।

अर्पितानर्पितसिद्धे:।।३२।।

वस्तु में अनेक धर्म होते हैं। जिसको मुख्य करे सो अर्पित और जिसको गौण करे सो अनर्पित है। इन दोनों नयों से वस्तु की सिद्धि होती है।

स्निग्धरूक्षत्वाद्बन्ध:।।३३।।

चिकनाई और रूखापन होने से पुद्‌गल परमाणु स्कंधों का बंध होता है।

न जघन्यगुणानाम्।।३४।।

जघन्य अर्थात् एक गुण सहित परमाण का बंध नहीं होता है।

गुणसाम्येसदृशानाम्।।३५।।

गुण की समानता होने पर भी सदृश पुद्‌गलों का बंध नहीं होता है।

द्वयधिकादिगुणानांतु।।३६।।

किन्तु दो अधिक गुणवालों का ही बंध होता है।

बंधेऽधिकौपारिणामिकौ च।।३७।।

बंध अवस्था में अधिक गुण सहित पुद्‌गल अल्प गुण सहित को परिणमावने वाले होते हैं।

गुणपर्ययवद्द्रव्यम्।।३८।।

द्रव्य, गुण और पर्याय वाला होता है।

कालश्च।।३९।।

काल भी द्रव्य है।

सोऽनन्त समयः।।४०।।

वह काल द्रव्य अनंत समय वाला है यद्यपि वर्तमान काल एक समयात्मक है; परन्तु भूत भविष्यत् वर्तमान की अपेक्षा अनन्त समयवाला है।

द्रव्याश्रया निर्गुणागुणाः।।४१।।

जो द्रव्य के नित्य आश्रित रहते हों और स्वयं अन्य गुणों से रहित हों वे गुण हैं।

तद्भाव: परिणाम:।।४२।।
वस्तुओं का जो स्वभाव वह परिणाम है।

इति तत्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे पञ्चमोऽध्याय:।

अध्याय ६

कायवाङ्मन: कर्मयोग:।।१।।
शरीर, वचन और मन की क्रिया को योग कहते हैं।

स आस्रव:।।२।।
वह योग ही कर्मों के आगमन का द्वार रूप आश्रव है।

शुभ: पुण्यस्याशुभ:पापस्य।।३।।
शुभयोग पुण्य का आश्रव है और अशुभ योगपाप का आश्रव है।

सकषायाकषाययो: साम्परायिकेर्य्यापथयो:।।४।।
कषाय सहित जीवों के साम्परायिक और कषाय रहित जीवों के ईर्यापथ आश्रव होता है।

**इन्द्रियकषायाब्रतक्रिया: पञ्चचतु: पञ्चपञ्चविं–
शति संख्या: पूर्वस्य भेदा:।।५।।**
पाँच इंद्रिय, चार कषाय, पाँच अव्रत और पच्चीस क्रिया ये सब पहिले साम्परायिक आश्रव के भेद हैं।

तीब्रमन्दज्ञाताज्ञातभावाधिकरणवीर्यविशे–
षेभ्यस्तद्विशेष:।।६।।

तीव्र भाव, मंद भाव, ज्ञात भाव अज्ञातभाव, अधिकरण और वीर्य्य की विशेषता से उस आश्रव में विशेषता अर्थात् न्यूनाधिकता होती है।

अधिकरणं जीवा जीवा:।।७।।

आश्रव का आधार जीव और अजीव दोनों हैं।

आद्यं संरम्भसमारंभारंभयोगकृतकारितानु–
मतकषाय विशेषैस्त्रिस्त्रिस्त्रिश्चतुश्चैकश:।।८।।

पहिला जीवाधिकरण समारम्भ (हिंसादि करने का संकल्प), समारम्भ (हिंसादि कार्यों का अभ्यास), (हिंसादि में प्रवृत हो जाना), से तीन प्रकार का है। प्रत्येक के मन, वचन और काययोग की अपेक्षा तीन तीन भेद होते हैं (३x३=९) तथा प्रत्येक के कृत (स्वयं करना), कारित (दूसरों से कराना) और अनुमति (किये कार्य की प्रशंसा करना) इसप्रकार प्रत्येक के तीन तीन भेद फिर होते हैं अत: (९x३=२७) भेद हुए। हर एक के क्रोध, मान, माया, लोभ के भेद से ये चार चार भेद होते हैं। इसलिए कुल मिलाकर (२७x४=१०८) भेद हुए।

निर्वर्तनानिक्षेपसंयोगनिसर्गा
द्विचतुर्द्वित्रिभेदा: परम।।९।।

दूसरे जीवाधिकरण–के–निर्वर्तना के दो (मूल गुण निर्वर्तना और उत्तरगुण निर्वर्तना), निक्षेपाधिकरण के चार (सहसा, अनाभोग दुष्प्रमार्जित और अप्रत्यवेक्षित, संयोगाधिकरण के दो (उपकरण और भक्तापन) और निसर्गाधिकरण के तीन (मन, वचन और काय भेद हैं।

तत्प्रदोषनिह्नवमात्सर्यान्तरायासादनोपघाता ज्ञानदर्शनावरणयोः।।१०।।

ज्ञान तथा दर्शन के विषय में प्रदोष (द्वेष), निह्नव (गुरु आदि का नाम छिपाना), मात्सर्य (ईर्षा), अन्तराय (विघ्न) आसादन और उपघात ये ज्ञानावरण और दर्शनावरण के आश्रव होने के कारण हैं

दुःखशोकतापाक्रन्दनवधपरिदेवनान्यात्मपरोभ– यस्थान्यसद्वेद्यस्य।।११।।

दुख, शो, ताप (पश्चाताप) आक्रन्दन (अश्रुपात पूर्वक रुदन), वध और परिदेवन (छाती फाड़रुदन) ये खुद करना दूसरों को कराना अथवा दोनों को एक साथ उत्पन्न करना ये असातावेदनीय कर्म के आश्रव हैं।

भूतव्रत्यनुकम्पादानसरागसंयमादियोगःक्षान्तिः– शौचमितिसद्वेद्यस्य।।१२।।

जीवों में और व्रतधारियों में दया, दान, सरागसंयम (राग सहित संयम) आदि योग, क्षमा और शोच इनसे साता वेदनीय कर्म का आश्रव होता है।

केवलिश्रुतसंघधर्मदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य।।१३।।

केवलज्ञानी का, शास्त्र का, मुनियों के संघ का, अहिंसामय धर्म का और देवों का अवर्णवाद (निंदा) करना दर्शन मोहनीय कर्म के आश्रव का कारण है।

कषायोदयात्तीव्रपरिणामश्चारित्रमोहस्य।।१४।।

कषायों के उदय से तीव्र परिणाम होना चारित्र मोहनीय कर्म के आश्रव का कारण है।

बाह्वारम्भपरिग्रहत्वं नारकस्यायुषः।।१५।।

बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रह रखना नरकायु के आश्रव का कारण है।

माया तैर्यग्योनस्य।।१६।।

माया (छलकपट) तिर्यंचायु के आश्रव का कारण है।

अल्पारंभपरिग्रहत्वं मानुषस्य।।१७।।

थोड़ा आरम्भ और थोड़ा परिग्रह मनुष्य आयु के आश्रव का कारण है।

स्वाभावमार्दवं च।।१८।।

स्वाभाविक कोमलता भी मनुष्यायु के आश्रव का कारण है।

निःशीलवतत्वं च सर्वेषाम्।।१९।।

दिग्व्रत, देशव्रत आदि सात शील तथा अहिंसा आदि पाँचो व्रतों को धारण नहीं करना चारों गतियों के आश्रव का कारण है।

सरागसंयमसंयमासंयमाकामनिर्जरा बालतपांसिदैवस्य।।२०।।

सरागसंयम, संयमासंयम (देशविरति), अकाम निर्जरा और बालतप ये देवायु के आश्रव के कारण हैं।

सम्यक्तवं च।।२१।।

और सम्यग्दर्शन भी देवायु का कारण है।

योगवक्रता विसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः।।२२।।

मन, वचन, काय के योगों की कुटिलता और अन्यथा प्रवृत्ति अशुभ नाम कर्म के आश्रव का कारण है।

तद्विपरीतं शुभस्य।।२३।।

इससे विपरीत अर्थात् योगों की सरलता और विसंवाद का अभाव शुभनाम कर्म के आश्रव का कारण है।

दर्शन विशुद्धिर्विनयसंपन्नता शीलव्रतेष्वनतिचारोऽभी– क्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौ शक्तितस्त्यागतपसीसाधुसमाधि– वैयावृत्यकरणमर्हदाचार्यबहुश्रुतप्रवचन भक्तिरावश्यका– परिहाणिर्मार्गप्रभावना प्रवचनवत्सलत्वमितितीर्थकरत्वस्य

(१) दोष रहित निर्मल सम्यक्तव (२) विनय सम्पन्नता (३) शील और व्रतों में अतिचार का अभाव (४) निरन्तर तत्वाभ्यास (५) संवेग (६) यथाशक्ति दान (७) तप (८) साधुसमाधि (९) वैयावृत्य (१०) अर्हद्भक्ति (११) आचार्य भक्ति (१२) बहुश्रुत भक्ति (१३) प्रवचनभक्ति (१४) समायिक आदि छह आवश्यक क्रियाओं को निश्चित रूप से पालन करना (१५) जैनधर्म की प्रभावना और (१६) साधर्मी जीवों के साथ गौ बछड़े के समान प्रेम करना ये सोलह भावनाएँ तीर्थंकर नामकर्म के आश्रव का कारण है।

परात्मनिंदाप्रशंसे सदसद्गुणोच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य।।२५।।

पर की निंदा, अपनी प्रशंसा, करके विद्यमान गुणों का आच्छादन और अपने अवद्यिमान गुणों का प्रकाशन ये नीच गोत्र कर्म के आश्रव के कारण हैं।

तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य।।२६।।

इससे विपरीत अर्थात् अपनी निंदा, पर की प्रशंसा, अपने गुण ढकना और दूसरों के गुण प्रकाशित करना, नम्रवृत्ति और निरभिमान ये उच्च गोत्र कर्म के आश्रव के कारण हैं।

विघ्नकरणमन्तरायस्य।।२७।।

पर के दान भोगादि में विघ्न करना अन्तराय कर्म के आश्रव का कारण है।

इति तत्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे षष्ठोऽध्याय:।

अध्याय ७

हिंसाऽनृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम्।।१ ।।

हिंसा, असत्य, चोरी, मैथुन और परिग्रह इनसे बुद्धि पूर्वक विरक्त होना व्रत है।

देशसर्वतोऽणुमहती।।२ ।।

इन पाँचों पापों का एक देश त्याग करना अणुव्रत है तथा मन, वचन, काय और कृत, कारित अनुमोदना से सर्वथा त्याग कर देना महाव्रत है।

तत्स्थैर्यार्थंभावना:पञ्च।।३ ।।

इन व्रतों को स्थिर रखने के लिए प्रत्येक व्रत की पाँच पाँच भावनाएँ हैं।

वाङ्गमनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपणसमित्यालोकितपान भोजनानि पंच।।४।।

वचन गुप्ति, मनोगुप्ति, ईर्यासमिति, आदाननिक्षेपण समिति और आलोकित पान भोजन (देखशोध कर भोजन करना) ये पाँच अहिंसा व्रत की भावनाएँ हैं।

क्रोधलोभभीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुवीचिभाषणं च पंच।।५।।

क्रोध, लोभ, भय और हास्य का त्याग तथा सूत्र के अनुसार निर्दोष वचन ये पाँच सत्यव्रत की भावनाएँ हैं।

शून्यागारविमोचितावासपरोधाकरण– भैक्ष्यशुद्धिसधर्माबिसंवादा: पंच।।६ ।।

खाली घर में रहना, किसी के छोड़े हुए स्थान में रहना, अन्य को रोकना नहीं, शास्त्र विहित भिक्षा की विधि में न्यूनाधिक नहीं करना और साधर्मी भाइयों से विसंवाद नहीं करना ये पाँच अचौर्य व्रत की भावनाएँ हैं।

स्त्रीरागकथाश्रवणतन्मनोहरांगनिरीक्षणपूर्वरतानुस्मर–
णवृष्येष्टरसस्वशरीरसंस्कारत्यागाःपञ्च।।७।।

स्त्रियों में प्रीति उत्पन्न करने वाली कथाओं को नहीं सुनना उनके मनोहर अंगों को राग सहित नहीं देखना, पूर्वकाल में किये हुए विषयभोगों का स्मरण नहीं करना, कामोद्दीपक रसों का त्याग और शरीर को शृंगार युक्त करने का त्याग ये पाँच ब्रह्मचर्य व्रत की भावनाएँ हैं।

मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रियविषयरागद्वेष वर्जनानि पंच।।८।।

पाँचों इन्द्रियों के इष्ट व अनिष्ट रूप स्पर्शरसादिक पाँचों विषयों में राग द्वेष का त्याग करना परिग्रह व्रत की पाँच भावनाए हैं।

हिंसादिष्विहामुत्रापायावद्यदर्शनम्।।९।।

हिंसादि पाँच पापों के करने से इस लोक में आपत्ति और परलोक में छेदन भेदनादि कष्ट सहन करने पड़ते हैं।

दुःखमेव वा।।१०।।

अथवा हिंसादि पाँच पाप दुःख रूप ही हैं।

मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थ्यानि च
सत्त्वगुणाधिकक्लिश्यमानाविनयेषु।।११।।

सर्व जीवों के साथ मित्रता, गुणाधिकों के साथ प्रमोद, दुःखियों के ऊपर करुणा बुद्धि और अविनयी जीवों पर माध्यस्थ्य भाव रखना चाहिए।

जगत्कायस्वभावौ वा संवेग वैराग्यार्थम्।।१२।।

अथवा संवेग और वैराग्य के लिए जगत और काय के स्वभाव का भी बारम्बार चिंतवन करना चाहिए।

प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरापणं हिंसा।।१३।।

प्रमाद के योग से भाव प्राण और द्रव्य प्राण का वियोग करना हिंसा है।

असदभिधानमनृतम्।।१४।।

जीवों के दु:ख देनेवाले मिथ्या वचन कहना सो असत्य है।

अदत्तादानं स्तेयम्।।१५।।

दूसरों के धन धान्यादि पदार्थों का उसके दिये बिना ग्रहण करना सो चोरी है।

मैथुनमब्रह्म।।१६।।

मैथुन अर्थात् विषय सेवन सो कुशील है।

मर्च्छा परिग्रह:।।१७।।

चेतन अचेतन रूप परिग्रह में ममत्व रूप परिणाम होना परिग्रह है।

नि:शल्यो व्रती।।१८।।

जो व्रती शल्य (माया, मिथ्यात्व और निदान) रहित है वही व्रती है।

अगार्यनगारश्च।।१९।।

व्रती, गृहस्थी और मुनि के भेद से दो प्रकार के होते हैं।

अणुव्रतोऽगारी।।२०।।

अणु मात्र व्रतवाला अर्थात् जिसके एक देश यथाशक्ति पाँचों पापों का त्याग हो वह गृहथ कहलाता है।

दिग्देशानर्थदण्डविरतिसामायिक प्रोषधोपवासोपभ–गपरिभोगपरिमाणातिथिसंविभागव्रतसंपन्नश्च।।२१।।

दिग्विरति, देशविरति, अनर्थ दंड विरति ये तीन गुणव्रत तथा सामायिक प्रोषधोपवास, उपभोग परिभोग परिमाण और अतिथि संविभाग ये चार शिक्षा व्रत हैं। ये सात व्रत भी गृहस्थी को धारण करना चाहिए।

मारणान्तिकीं सल्लेखनां जोषिता।।२२।।

गृहस्थ मृत्यु के समय होने वाली सल्लेखना को प्रीति पूर्वक धारण करे।

शंकाकाङ्क्षाविचिकित्साऽन्यदृष्टिप्रशंसा–
संस्तवाः सम्यग्दृष्टेरतीचाराः।।२३।।

शंका, काङ्क्षा (इस लोक और परलोक सम्बन्धी भोगों की वाञ्छा), विचिकित्सा (मुनियों को मलिन देखकर ग्लानि करना) अन्यदृष्टि प्रशंसा (मिथ्या दृष्टि के ज्ञान चारित्र आदि की मन से प्रशंसा करना) अन्यदृष्टि संस्तव (उनकी वचन से स्तुति करना) ये सम्यग्दृष्टि के पाँच अतीचार हैं।

व्रतशीलेषु पंचपंच यथाक्रमम्।।२४।।

इसी प्रकार पाँच व्रत और सातशीलों में भी क्रम से पाँच पाँच अतीचार हैं।

बंधवधच्छेदातिभारारोपणान्नपान निरोधाः।।२५।।

बंध, बध, छेद, अतिभारारोपण और अन्नपाननिरौध ये पाँच अहिंसाणुव्रत के अतीचार हैं।

मिथ्योपदेशरहोभ्याख्यानकूटलेख
क्रियान्यासापहारसाकारमंत्रभेदाः।।२६।।

मिथ्या उपदेश, रहस्यों का प्रकट करना; झूठे खत स्आम्प वगैरह लिखना, धरोहर का हर लेना, साकार मंत्र भेद (मुँह आदि की चेस्टा से अभिप्राय जानकर उसको प्रकट करना) ये सत्याणुव्रत के पाँच अतिचार हैं।

स्तेनप्रयोगतदाहृतादानविरुद्धराज्यातिक्रमहीनाधि–
कमानोन्मान प्रतिरूपकव्यवहाराः।।२७।।

चोरी करने का उपाय बताना, चोरी की वस्तु ग्रहण करना, राजा की आज्ञा का लोप करके विरुद्ध चलना, लेने देने में बाट हीनाधिक रखना और अच्छी बुरी वस्तु मिला कर बेचना ये पाँच अस्तेयव्रत के अतीचार हैं।

परविवाहकरणत्वरिकापरिगृहीतापरिगृहीता
गमनानंगक्रीड़ामतीव्राभिनिवेशाः।।२८।।

दूसरों के विवाह कराना, दूसरे की विवाही हुई व्यभिचारणी स्त्री के यहाँ आना जाना, वेश्यादि व्यभिचारणी स्त्रियों के साथ लेन देन वार्तालाप आदि रखना कामसेवन के अंगो को छोड़कर अन्य अंगो से क्रीड़ा करना, अपनी स्त्री में काम सेवन की अतयन्त अभिलाषा रखना ये पाँच ब्रह्मचर्य व्रत के अतीचार हैं।

क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्णधनधान्य दासीदास–
कुप्यप्रमाणातिक्रमाः।।२९।।

क्षेत्रवास्तु, चाँदी सुवर्ण दासी दास और (कुप्य तांवा पीतल आदि धातु के वर्तन) इसके परिमाण का उल्लंघन करना ये पाँच परिग्रह परिमाण व्रत के अतीचार है।

ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्व्यतिक्रमक्षेत्रवृद्धि स्मृत्यन्तराधानानि।।३०।।

ऊर्ध्व दिशा का, अधो दिशा का, तिर्यग् दिशा का उल्लंघंन तथा क्षेत्र वृद्धि व स्मृति का विस्मरण हो जाने से नियम के बाहर की दिशाओं का गमन करना ये पाँच दिग्व्रत के अतीचार हैं।

आनयनप्रेष्यप्रयोगशब्दरूपानुपातपुद्गलक्षेपाः।।३१।।

मर्यादा से बाहर की वस्तु मंगवाना, भेजना, शब्द करके बुलाना अपना रूप दिखाकरके बुलाना, पत्थर आदि फेंकना ये पाँच देशावकाशिक व्रत के अतीचार हैं।

कन्दर्पकौत्कुच्यमौखर्यासमीक्ष्याधिकरणोप–
भोगपरिभोगानर्थक्यानि।।३२।।

रागयुक्त असभ्यवचन बोलना, काय से कुचेष्टा करना, निरर्थक प्रलाप करना, बिना विचारे अधिक प्रवृत्ति करना, भोगोपभोग के पदार्थों का आवश्यकता से अधिक संग्रह करना ये पाँच अनर्थ दंड व्रत के अतीचार हैं।

योगदुष्प्रणिधानानादरस्मृत्यनुपस्थानानि।।३३।।

मन, वचन और काय का अन्यथा चलायमान करना ये तीन तथा अनादर और सामायिक की विधि को पूर्ण नहीं करना ये पाँच सामायिक व्रत के अतीचार हैं।

अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्गादानसंस्तरोप
क्रमणानादरस्मृत्यनुपस्थानानि।।३४।।

अप्रत्यवेक्षित (बराबर देखे बिना) अप्रमार्जित (प्रमार्जन किये बिना) उत्सर्ग (मल मूत्रादि करना) तथा आदान उपकरण ग्रहण

करना, संथारादि बिछाना व्रत का अनादर करना और भूल जाना ये पाँच प्रोषधोपवास व्रत के अतीचार हैं।

सचित्तसम्बद्धसंमिश्राभिषवदुष्पक्वाहारा:।।३५।।

सचित्त पदार्थों से सम्बन्ध वाला, सचित्त वस्तु से मिला हुआ, अभिषव (पौष्टिक व मादक द्रव्य का आहार) और कच्चा पक्का आहार करना ये पाँच उपभोग परिभोग परिमाण व्रत के अतीचार हैं।

सचित्तनिक्षेपापिधानपरव्यपदेश
मात्सयकालातिक्रमा:।।३६।।

प्राशुक आहारादि, सचित्त वस्तु पर रखना, सचित्त वस्तु से ढकना, अन्य की वस्तु का दान देना, ईर्षा करके दान देना, काल का उल्लंघन करके अकाल में भोजन देना ये पाँच अतिथि संविभाग व्रत के अतीचार हैं।

जीवितमरणाशंसामित्रानुराग
सुखानुबंधनिदानानि।।३७।।

जीने की इच्छा करना, मरने की इच्छा करना, मित्रों से प्रेम करना, पूर्वकाल में भोगे हुए सुखों को याद करना, अगले जन्म के लिए विषयादि की वाञ्छा करना ये पाँच समाधिमरण के अतीचार हैं।

अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम्।।३८।।

उपकार के लिए अपनी वस्तु का त्याग करना सो दान है।

विधिद्रव्यदातृपात्रविशेषात्तद्विशषे:।।३९।।

विधि, द्रव्य, दाता और पात्र की विशेषता से उस दान में भी विशेषता होती है।

इति श्रीतत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः।

अध्याय ८

मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाय योगा बंधहेतवः।।१।।

मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद कषाय और योग ये पाँच बंध के कारण हैं।

सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान्
पुद्गलानादत्ते स बन्धः।।२।।

कषाय सहित होने से जीव कर्म के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करता है वह बंध है।

प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशास्तद्विधयः।।३।।

प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश इसप्रकार बन्ध चार प्रकार का होता है।

आद्योज्ञानदर्शनावरणवेदनीय मोहनीयायु–
र्नामगोत्रांतरायाः।।४।।

पहिला प्रकृतिबंध– (१) ज्ञानावरण (२) दर्शनावरण (३) वेदनीय (४) मोहनीय (५) आयु (६) नाम (७) गोत्र और (८) अन्तराय इस तरह आठ प्रकार का है।

पंचनवद्व्यष्टाविंशतिचतुर्द्विचत्वारिंशद्
द्विपञ्चभेदायथाक्रमम्।।५।।

उन आठ मूल प्रकृतियों के क्रम से पाँच, नौ, दो, अट्ठाईस, चार, बयालीस दो और पाँच भेद हैं।

मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानाम्।।६।।

(१) मतिज्ञानावरण (२) श्रुतज्ञानावरण (३) अवधिज्ञानावरण (४) मनः पर्यय ज्ञानावरण (५) केवलज्ञानावरण ऐसे पाँच भेद ज्ञानावरण प्रकृति के हैं।

चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानां निद्रा निद्रानिद्रा प्रचला प्रचलाप्रचला स्त्यानगृद्धयश्च।।७।।

(१) चक्षुदर्शनावरण (२) अचक्षुदर्शनावरण (३) अवधिदर्शनावरण (४) केवलदर्शनावरण (५) निद्रा (६) निद्रानिद्रा (७) प्रचला (८) प्रचला प्रचला और (९) स्त्यानगृद्धियेनौ भेद दर्शनावरण के हैं।

सदसद्वेद्ये।।८।।

वेदनीय कर्म के सातावेदनीय और असातावेदनीय ये दो भेद हैं।

दर्शनचारित्रमोहनीयाकषायकषायवेदनीयाख्या–स्त्रिद्विनवषोडश भेदाः सम्क्यत्व मिथ्यात्व तदुभया–न्यकषाय कषायौ हास्य रत्यरतिशोकभयजुगुप्सास्त्रीपुं–नपुंसक वेदाअनंतानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यान–संज्वलन विकल्पाश्च कैशःक्रोधमानमायालोभाः।।९।।

मोहनीय के दर्शन मोहनीय और चारित्रमोहनीय ये दो भेद होते हैं इनमें से दर्शनमोहनीय के सम्यक्तव, मिथ्यात्व और सम्यक्मिथ्यात्व ये तीन भेद हैं। चारित्र मोहनीय के अकषायवेदनीय और कषाय वेदनीय ये दो भेद हैं इनमें से पहिला तो हास्य, रति, अरति, शोक, भय जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसक वेद ऐसे नौ प्रकार का है। कषायवेदनीय अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और संज्वलन के भेदों

सहित क्रोध मान, माया और लोभ रूप सोलह प्रकार का होता है। इसतरह कुल ३+९+१६= २८ भेद हुए।

नारकतैर्यग्योनमानुषदैवानि।।१०।।

नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव इस तरह आयु कर्म की चार प्रकृतियाँ हैं।

गतिजातिशरीरांगोपांगनिर्माणबंधनसंघातसंस्थानसंह—ननस्पर्शरसगंधवर्णानुपूर्व्यागुरुलघूपघात परघातातपो—द्योताच्छ्वासविहायागतयः प्रत्येकशरीरत्रससुभग—सुस्वर शुभसूक्ष्मपर्याप्ति स्थिरादेययशः कीर्तिसेतराणि तीर्थकरत्वंच।।११।।

१ गति, २ जाति, ३ शरीर, ४ अंगोपांग, ५ निर्माण, ६ बंधन, ७ संघात, ८ संस्थान, ९ संहनन, १० स्पर्श, ११ रस, १२ गंध, १३ वर्ण, १४ आनुपूर्व्य, १५ अगुरुलघु, १६ उपघात, १७ परघात, १८ आतप, १९ उद्योत, २० उच्छ्वास, २१ और बिहायोगति ये इक्कीस तथा २२ प्रत्येक शरीर, २३ त्रस, २४ सुभग, २५ सुस्वर, २६ शुभ, २७ सूक्ष्म, २८ पर्याप्ति, २९ स्थिर, ३० आदेय, ३१ यशः कीर्ति ये दश। तथा इनके प्रतिपक्षी ३२ साधारण शरीर, ३३ स्थावर, ३४ दुर्भग, ३५ दुस्वर, ३६ अभशु, ३७ बादर, ३८ अपर्याप्ति, ३९ अस्थिर, ४० अनादेय, ४१ अयशकीर्ति ये दश ४२ तीर्थकरत्व ये बयालीस प्रकृति नामकर्म कीं हैं।

उच्चैर्नीचैश्च।।१२।।

उच्च गोत्र और नीच गोत्र ये दो गोत्र कर्म के भेद हैं।

दान लाभ भोगोपभोग वीर्याणाम्।।१३।।

दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य इन पाँच शक्तियों से विघ्न अन्तराय कर्म पाँच प्रकार का है।

आदितस्तिसृणामन्तरायस्य च त्रिंशत्सागरापम कोटी कोटय: परा स्थिति:।।१४।।

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तराय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति तीस कोडा कोडी सागर की है।

सप्ततिर्मोहिनीयस्य।।१५।।

मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति ७० कोडाकोडी सागर की है।

विंशतिर्नामगोत्रयो:।।१६।।

नाम कर्म और गोत्र कर्म की, उत्कृष्ट स्थिति २० कोडाकोडी सागर की है।

त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुष:।।१७।।

आयुकर्म की उत्कृष्ट स्थिति ३३ सागर की है।

अपरा द्वादश मुहूर्त्ता वेदनीयस्य।।१८।।

वेदनीय कर्म की जघन्य स्थिति १२ मुहूर्त की है।

नामगोत्रयोरष्टौ।।१९।।

नाम कर्म और गोत्रकर्म की जघन्य स्थिति आठ मुहूर्त की है।

शेषाणामन्र्तहूर्त्ता।।२०।।

बाकी के पाँच कर्मों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है।

विपाकोऽनुभव:।।२१ ।।

कर्मों में फलदान शक्ति का पड जाना विपाक है।

स यथानाम।।२२।।

वह अनुभाग बंध कर्म की प्रकृतियों के नामानुसार होता है।

ततश्च निर्जरा।।२३।।

कर्मफल भोग के पश्चात् उन कर्मों की निर्जरा हो जाती है।

नामप्रत्यया: सर्वतो योग विशेषात्सूक्ष्मैक क्षेत्रा–
वगाहस्थिता: सर्वात्मप्रदेशेष्वनन्तानंतप्रदेशा:।।२४।।

आत्मा के योग विशेषों द्वारा त्रिकाल बँधने वाले नामादि प्रकृतियों के कारणी भूत तथा आत्मा के सर्व प्रदेशो में व्याप्त होकर कर्म रूप परिणमने योग्य सूक्ष्म और जिस क्षेत्र में आत्मा ठहरा हो उसी क्षेत्र को अवगाह कर ठहरने वाले ऐसे अनन्तानन्त प्रदेश रूप पुद्गल स्कंधों को प्रदेशबंध कहते हैं।

सद्वेद्य: शुभायुर्नामगोत्राणिपुण्यम्।।२५।।

सातावेदनीय, शुभायु, शुभनाम और शुभगोत्र ये पुण्य रूप प्रकृतियाँ हैं।

अतोऽन्यत् पापम्।।२६।।

उक्त प्रकृतियों से बाकी बची हुई कर्म प्रकृतियाँ पाप रूप अशुभ प्रकृतियाँ हैं।

इति श्रीतत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे अष्टमोऽध्याय:।

अध्याय ९

आस्रवनिरोधः संवरः।।१।।

आस्रवों का निरोध करना सो संवर है।

सु गुप्ति समिति धर्मानुप्रेक्षापरीषहजय चारित्रैः।।२।।

वह संवर गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा (भावना) परीषहजय और चारित्र इन छः कारणों से होता है।

तपसा निर्जराच।।३।।

तप से निर्जरा और संवर दोनों होते हैं।

सम्यग्योगनिग्रहो गुप्तिः।।४।।

मन वचन काय की यथेच्छ प्रवृत्ति को भले प्रकार रोकना सो गुप्ति है।

ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गाः समितयः।।५।।

(१) ईर्या, (२) भाषा, (३) एषणा (४) आदाननिक्षेप (५) उत्सर्ग ये पाँच समितियाँ हैं।

उत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयम
तपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्याणि धर्मः।।६।।

१ उत्तमक्षमा, २ उत्तममार्दव (नम्रता), ३ उत्तम आर्जव (सरलता), ४ उत्तम सत्य, ५. उत्तम शौच, ६ उत्तम (संयम), ७ उत्तम तप, ८ उत्तम (त्याग), ९ उत्तमआकिंचन्य (निष्परिग्रहता), १० उत्तम ब्रह्मचर्य ये दश धर्म हैं।

अनित्याशरणसंसारैकत्वान्यत्वाशुच्यास्रवसंवरनिर्जरा—

लोकबोधिदुर्लभधर्मस्वाख्याततत्त्वानुचिन्तनमनुप्रेक्षाः।

१ अनित्य, २ अशरण, ३ संसार, ४ एकत्व, ५ अन्यत्व, ६ अशुचि, ७ आश्रव, ८ संवर, ९ निर्जरा, १० लोक, ११ बोधिदुर्लभ, १२ धर्म इनमें कहे हुए तत्त्वों का चिन्तवन ये बारह भावनाएँ हैं।

मार्गाच्यवननिर्जरार्थं परिषोढव्याः परीषहाः।।८।।

मोक्षमार्ग से अलग नहीं हो जावे इसलिए था कर्मों की निर्जरा करने के लिए परीषह सहना चाहिए।

क्षुत्पिपासा शीतोष्ण दंशमशक नाग्न्यारतिस्त्री चर्यानिषद्याशय्याऽऽक्रोशवधयाञ्चालाभरोगतृणस्पर्श– मलसत्कारपुरस्कारप्राऽज्ञानादर्शनानि।।९।।

१ भूख, २ प्यास, ३ ठंड, ४ गर्मी, ५ दंशमशक (डांस मच्छर), ६ नग्नता, ७ अरति, ८ स्त्री, ९ चर्या (चलना), १० निषद्या (आसन), ११ शय्या शयन, १२ आक्रोश (गाली), १३ बध, १४ याचना, १५ अलाभ, १६ रोग, १७ तृणस्पर्श, १८ मल, १९ सत्कार पुरस्कार , २० प्रज्ञा, २१ अज्ञान, २२ अदर्शन ये परीषह हैं।

सूक्ष्मसाँपरायछद्मस्थवीतरागयोश्चतुर्दश।।१०।।

सूक्ष्मसांपरायनामक दशवें गुणस्थान वालों के तथा छद्मस्थ वीतराग अर्थात् उपशांत कषाय नामक ग्यारहवें गुणस्थान में रहने वालों के चौदह परिषह होती हैं।

एकादश जिने।।११।।

तेरहवें गुणस्थानवर्ती जिन (केवली भगवान्) के ग्यारह परिषह होती हैं।

बादर साम्पराये सर्वे।।१२।।

स्थूल कषाय वाले अर्थात् छट्ठे से नवमें गुणस्थान तक २२ परिषह होती हैं।

ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने।।१३।।

ज्ञानावरण कम के उदय होने पर प्रज्ञा और अज्ञान परीषह होती है।

दर्शनमोहान्तराययोरदर्शनालाभौ।।१४।।

दर्शन मोहनीय के उदय से अदर्शन परिषह और अंतराय के उदय से अलाभ परिषह होतीं हैं।

चारित्रमोहेनाग्न्यारतिस्त्रीनिषद्याक्रोशयांचा–
सत्कारपुरस्कारा:।।१५।।

चारित्र मोहनीय के उदय होने पर नग्नता, अरति स्त्री निषद्या, आक्रोश याचना और सत्कार पुरस्कार ये सात परीषह होती हैं।

वेदनीये शेषा:।।१६।।

वेदनीय कर्म के उदय होने पर बाकी की क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दंशमशक, चर्या, शय्या, बध, रोग, तृणस्पर्श और मल ये ग्यारह परिषह होती हैं।

एकादयो भाज्या युगपदेकस्मिन्नैकोनविंशति:।।१७।।

एक जीव में एक को आदि लेकर एक साथ १९ परिषह तक हो सकती हैं।

सामायिकच्छेदोपस्थापना परिहारविशुद्धि
सूक्ष्म सांपराय यथाख्यातमिति चारित्रम्।।१८।।

१ सामायिक, २ छेदोपस्थापना, ३ परिहारविशुद्धि, ४ सूक्ष्मसांपराय, ५ यथाख्यात इस तरह पाँच प्रकार का चारित्र है।

अनशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यान रसपरित्याग
विविक्तशय्यासनकायक्लेशा बाह्य तपः।।१९।।

१ अनशन, २ अवमौदर्य भूख से कम खाना, वृत्तिपरिसंख्यान भोज्य पदार्थों की गिनती रखना, ४ रसपरित्याग रसों का त्याग, ५ विविक्त शय्यासन एकान्त में शयन और आसन, ६ कायक्लेश ये ६ प्रकार के बाह्य तप हैं।

प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्त्यस्वाध्यायव्युत्सग
ध्यानान्युत्तरम।।२०।।

१ प्राचश्चित्त, २ विनय, ३ वैयावृत्य, ४ स्वाध्याय, ५ व्युत्सर्ग, ६ ध्यान ये ६ अभ्यंतर तप हैं।

नवचतुर्दशपञ्चाद्विभेदायथाक्रमंप्राग्ध्यानात्।।२१।।

ध्यान से पहिले पाँच तपों के क्रम से नौ, चार, दस, पाँच और दो भेद होते हैं।।

आलोचना प्रतिक्रमण तदुभय विवेक व्युत्सर्ग
तपश्छेद परिहारोपस्थापनाः।।२२।।

१आलोचना, २ प्रतिक्रमण (मैंने जो अपराध किये हैं वे मिथ्या हों), ३ आलोचना प्रतिक्रमण, ४ विवेक अहारादिक का त्याग, ५ व्युत्सर्ग (कायोत्सर्ग), ६ तप, ७ छेद (दोष लगने पर पहले का चारित्र छेद देना), ८ परिहार (संघ से बाहर करना), ९ उपस्थापना (फिर से दीक्षा देना) ये नव भेद प्रायश्चित के हैं।

ज्ञानदर्शनचारित्रोपचाराः।।२३।।

१ ज्ञान, २ दर्शन, ३ चारित्र, ४ उपचार इस तरह विनय के चार भेद हैं।

आचार्योपाध्यायतपस्विशैक्षग्लानगणकुलसंघ–
साधुमनोज्ञानाम्।।२४।।

१ आचार्य, २ उपाध्याय, ३ तपस्वी, ४ शैक्ष (नवीन दीक्षित), ५ ग्लान (रोगी), ६ गण (बड़े मुनियों की परिपाटी के) ७ (कुल दीक्षा देने वाले आचार्य के शिष्य), ८ संघ, ९ साधु और १० मनोज्ञ (लोकमान्यचरित्र को पालन करने वाले) इन दश प्रकार के साधुओं की सेवा करना सो दश प्रकार का वैयावृत्य है।

वाचनापृच्छनाऽनुप्रेक्षाम्नायधर्मोपदेशाः।।२५।।

१ वाचना (पढ़ना), २ पृच्छना (पूछना), ३ अनुपेक्षा (बारम्बार चितवन करना), ४ आम्नाय (पाठ का शुद्धता पूर्वक पढ़ना), ५ धर्मोपदेश धर्म का उपदेश देना) ये स्वध्याय के पाँच भेद हैं।

बाह्याभ्यन्तरोपाध्योः।।२६।।

धन धन्यादि बाह्य परिग्रह का तथा क्रोधादि अभ्यन्तर परिग्रह का त्याग इस प्रकार व्युत्सर्ग के दो भेद हैं।

उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिंतानिरोधोध्यानमांतर्मुहूर्तात्।।२७।।

चिंताओं को रोककर एक ओर चितवृत्ति का लगाना एकाग्रचिंता निरोध ध्यान है वह उत्तम संहनन वाले के अंतर्मुहूत तक होता है।

आर्तरौद्रधर्म्यशुक्लानि।।२८।।

आर्त, रौद्र, धर्म्य और शुक्ल ये चार प्रकार के ध्यान हैं

परे मोक्ष हेतू।।२९।।

आगे के दो धर्म्य और शुक्लध्यान मोक्ष के कारण हैं।

आर्त्तममनोज्ञस्यसम्प्रयोगेतद्विप्रयोगाय स्मृतिसमन्वाहारः।।३०।।

अनिष्ट पदार्थों के संयोग हो जाने पर उसको दूर करने के लिए बारम्बार चिंता करना सो पहला आर्तध्यान है।

विपरीतं मनोज्ञस्य।।३१।।

वियोग होने पर उन पदार्थों की प्राप्ति के लिए बारम्बार चिन्ता करना सो दूसरा आर्त्तध्यान है।

वेदनायाश्च।।३२।।

वेदना अर्थात् रोगजनित पीड़ा का चिंतवन करना, अधीर हो जाना सो तीसरा आर्त्तध्यान है।

निदानं च।।३३।।

आगामी विषय भोगादिक का निदान करना सो चौथा आर्त्तध्यान है।

तदविरतदेशविरतप्रमत्तसंयतानाम्।।३४।।

वह आर्त्तध्यान पहले से चौथे तक तथा पाँचवे छट्टे गुणस्थान वालों के होता है।

हिंसानृतस्तेयविषयसंरक्षणेभ्यो रौद्रमविरतदेशविरतयोः।।३५।।

हिंसा, झूठ, चोरी और विषयों की रक्षा करने के लिए उनका बारबार चितवन करना सो रौद्र ध्यान है। यह अविरत और देशविरत गुणस्थान वर्ती जीवों के होता है।

आज्ञाऽपायविपाकसंस्थानविचयाय धर्म्यम्।।३६।।

आज्ञाविचय (जिन आज्ञा को प्रमाण मानना), अपायविचय (सन्मार्ग से गिरने का दुख मानना) विपाकविचय (कर्मों के फल का चिन्तवन) संस्थानविचय (लोक के आकार का चिन्तवन करना) सो चार प्रकार का धर्मध्यान है।

शुक्लेचाद्येपूर्वविदः।।३७।।

आदि के दो शुक्लध्यान पूर्व के जानने वाले अर्थात् श्रुतकेवली के होते हैं।

परे केवलिनः।।३८।।

आगे के दो अर्थात् सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति और व्युपरतक्रियानिवर्ती ये दो ध्यान सयोग केवली और अयोग केवली के होते हैं।

पृथक्त्वैकत्ववितर्कसूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति व्युपरतक्रियानिवर्तीनि।।३९।।

१ पृथक्त्ववितर्क, २ एकत्ववितर्क, ३ सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति, ४ व्युपरतक्रियानिवर्ति ये शुक्ल ध्यान के चार भेद हैं।

त्र्येकयोगकाययोगायोगानाम्।।४०।।

पहिला शुक्ल ध्यान तीनों योगों के धारकों के, दूसरा शुक्ल ध्यान तीन में से किसी एक योग वाले के, तीसरा शुक्ल ध्यान काययोग वालों के और चौथा अयोगकेवली के हाता है।

एकाश्रयेसवितर्कवीचारे पूर्वे।।४१।।

पहिले के दो ध्यान एकाश्रय अर्थात् श्रुतकेवली के आश्रय तथा वितर्क और वीचार सहित होते हैं।

अवीचारं द्वितीयम्।।४२।।

दूसरा शुक्ल ध्यान वितर्क सहित किन्तु वीचार रहित है।

वितर्कः श्रुतम्।।४३।।

वितर्क (विशेष प्रकार से तर्क करना) सो श्रुतज्ञान है।

वीचारोऽर्थव्यञ्जनयोगसंक्रान्तिः।।४४।।

अर्थ, व्यञ्जन और योगों का परिवर्तन है सो विचार है।

सम्यग्दृष्टिरावकविरतानन्तवियोजकदर्शन

मोहक्षपकोपशमकोपशांतमोहक्षपकक्षीणमोहजिना:
क्रमशोऽसंख्येयगुणनिर्जरा:।।४५।।

१ सम्यग्दृष्टि, २ श्रावक, ३ विरत (महाव्रतीमुनी), ४ अनंतानुबंधी का विसंयोजन करने वाला, ५ दर्शन मोह को नष्ट करनेवाला, ६ चारित्र मोह का शमन करनेवाला, ७ उपशांत मोह वाला, ८ क्षपकश्रेणी चढ़ता हुआ, ९ क्षीण मोही, १० जिनेन्द्र भगवान् इस सब के क्रम से उत्तरोत्तर असंख्यात गुणी निर्जरा होती है।

पुलाकवकुशकुशीलनिर्ग्रन्थस्नात का निर्ग्रन्था:।।४६।।

१ पुलाक, २ वकुश, ३ कुशील, ४ निर्ग्रन्थ, ५ स्नातक ये पाँच प्रकार के निर्ग्रन्थ दिगम्बर साधु होते हैं।

संयमश्रुतप्रतिसेवनातीर्थलिंग
लेश्योपपादस्थानविकल्पत:साध्या:।।४७।।

१ संयम, २ श्रुत, ३ प्रति सेवना, ४ तीर्थ, ५ लिंग, ६ लेश्या, ७ उपपाद, ८ स्थान इन आठ प्रकार के भेदों से भी पुलाकादि मुनियों के और भी भेद होते हैं।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रेनवमोऽध्याय:।

अध्याय १०

मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलम्।।१।।

मोहनीय कर्म के क्षय होने के पश्चात् तथा ज्ञान दर्शनावरण और अंतराय कर्म के क्षय होने से केवलज्ञान उत्पन्न होता है।

बन्धहेत्वभाव निर्जराभ्यांकृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्ष:

बंध के कारणों के अभाव होने से तथा निर्जरा से समस्त कर्मों का अत्यन्त अभाव हो जाना सो मोक्ष है।

औपशमिकादि भव्यत्वानां च।।३।।

और मुक्त जीव के औपशमिकादि भावों का तथा भव्यत्व भाव का भी अभाव हो जाता है।

अन्यत्र केवलसम्यक्त्वज्ञानदर्शन सिद्धत्वेभ्यः।।४।।

केवल सम्यक्तव, केवलज्ञान, केवलदर्शन और सिद्धत्व इन चार भावों के सिवाय अन्य भावों का मुक्त जीव के अभाव होता है।

तदनन्तरमूध्व गच्छत्यालोकान्तात्।।५।।

समस्त कर्मों के नष्ट हो जाने के पश्चात् मुक्त जीव लोक के अंतभाग तक ऊपर को जाकर सिद्धशिला में विराजमान हो जाता है।

पूर्वप्रयोगादसंगत्वाद्वंधच्छेदात्तथागतिपरिणामाच्च।।६।।

१ पूर्व प्रयोग से, २ असंग होने से, ३ कर्म बंध के नष्ट हो जाने से और ४ सिद्ध गति का ऐसा ही परिणमन होने से मुक्तजीव का ऊर्ध्व गमन होता है।

आविद्धकुलालचक्रवद्व्यपगतलेपालांबुवदे–
रंडबीजवदग्निशिखावच्च।।७।।

मुक्तजीव के उर्द्धगमन में पूर्व सूत्र में जो हेतु बताये गये हैं उनको दृष्टान्त द्वारा बताया जाता है पूर्व प्रयोग से कुम्हार के घुमाए हुए चाक के समान, असंग होने से मिट्टी के लेप रहित तूंवी के समान, कर्मबंध के नष्ट होने से एरंड बीज के समान, स्वभाव से अग्निशिखा के समान, मुक्त जीव का ऊर्ध्वगमन होता है।

धर्मास्तिकायाभावात्।।८।।

मुक्त जीव का अलोकाकाश में धर्मास्तिकाय का अभाव होने से गमन नहीं होता है।

क्षेत्रकालगतिलिङ्गतीर्थचारित्र प्रत्येकबुद्धबोधित—
ज्ञानावगाहनान्तरसंख्याल्पबहुत्वत: साध्या:।।९।।

१ क्षेत्र, २ काल, ३ गति, ४ लिंग, ५ तीर्थ, ६ चारित्र, ७ प्रत्येक बुद्धबोधित, ८ ज्ञान, ९ अवगाहना, १० अन्तर, ११ संख्या, १२ अल्पबहुत्व इन बारह अनुयोगों से सिद्धों में भी भेद किया जा सकता है।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे दशमोऽध्याय:।।१०।।

मोक्षमार्गस्य नेतारं, भेत्तारं कर्मभूभृतां।
ज्ञातारं विश्वतत्वानां, बन्दे तद्गुणलब्धये।।
कोटिशतं द्वादश चैव कोटयो लक्ष्याण्यशीतिस्त्र्यधिकानि चैव।
पंचाशदष्टौ च सहस्रसंख्यामेतद्श्रुतं पंचपंच नमामि।।१।।
अरहंत भासियर्ती गणहरदेवेहिं गंथियं सव्वं।
पणमामि भत्तिजुत्तो, सुदणाणमहोवयं सिरसा।।२।।
अक्षरमात्रपदस्वरहीनं व्यंजनसंधिविवर्जितरेफम्।
साधुभिरत्र मम क्षमितव्यं को न विमुह्यति शास्त्रसमुद्रे।।३।।
दशाध्याये परिच्छिन्ने तत्वार्थे पठिते सति।
फलं स्यादुपवासस्य भाषितं मुनिपुंगवै:।।४।।
तत्त्वार्थसूत्रकर्तारं गृद्धपिच्छोपलक्षितम्।
वंदे गणीन्द्रसंजातमुमास्वामिमुनीश्वरम्।।५।।
जं सक्कइ तं कीरइ, जं पण सक्कइ तहेव सद्दहणं।
सद्दहमाणो जीवो पावइ अजरामरं ठाणं।।६।।
तव यरणं वयधरणं, संजमसरणं च जीवदयाकरणम्।
अंते समाहिमरणं; चउविह दुक्खं णिवारेई।।७।।
इति तत्त्वार्थसूत्रापरनाम तत्वार्थाधिगम, मोक्षशास्त्रं समाप्तम्।

समाप्तम

जैन ग्रन्थ और चित्र मिलने का पता

जैन पुस्तक भवन

१६१।१ हरीसन रोड, कलकत्ता ७